चा
सा
एव
पर
हर
क

प्र
ह
द
ट
ि

१
२

अन्धा चाँद

*

मुनि रूपचन्द्र
संकलयिता कमलेश चतुर्वेदी



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

नानपीठ लावोत्य ग्रथमाला ग्रथाक-२१८
सम्पादक एव नियामक
लक्ष्माचन्द्र जैन

Lokodaya Series Title No 218

ANDHA CHAND

(P m)

MUNI ROOPCHANDRA

Bharatiya Jnanpith Publication

First Edition 1965

Price Rs 3 00

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
प्रधान कार्यालय
९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५
विक्रय केन्द्र
३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली ६
प्रथम संस्करण १९६५
मूल्य ३ ००

सन्मति मुद्रणालय वाराणसी-५

श्रद्धालोक के देवता
आचार्यश्री तुलसी को

एक दृष्टि

•

विचार न न्वा परिधान पहनकर हो दश्य जगतमें आते ह। परिधानके चुनावपर ही उस विचारकी विधाका निणय किया जाता ह। ढीली ढाली पोशाकवाले विचार उपन्यास कहानी नाटक आदि विधाओ का पगतमें बठन हैं तो चस्त परिधानवाले विचार कायकी। चुस्त परिधानका अथ गन्दामें कवल तुक या लय होना ही नही ह, अभिव्यक्ति की मार्मिकता मुख्य ह।

आचाय श्री तुलसीके अ तेवासी मुनि रूपच द्रजाकी प्रथम काव्य कृति 'अ धा चाद' की रचनाए उपरोक्त विश्लेषणके आधारपर निसन्देह काव्यकी विधाके अ तगत हो आती ह। रचनाओंकी मार्मिकता और मौलिकता कविकी सक्षमताकी परिचायक ह।

नयी कविताके प्रति पूर्वाग्रही और तुक ताल लयके प्रमी काव्यरसिका के मनमें जो उपेक्षाका भाव ह और जो उन्मोन्मुख प्रतिभाओंके पथकी बाधाओंको ही अपने पथकी सफलता मानते ह उनसे मुझे कुछ विशष नही कहना ह पर जो सृजनाकी नवीन शलियो और अभिव्यक्तिके नये माध्यम खोजनेमें सतत निरत प्रतिभाओंके प्रति जिज्ञासाशील ह उन्हें 'अ धा चाद' की रचनाए आनन्द और सन्तोष देंगी, यह कहनेमें मुझे कोई सकोच नही ह।

आजके इस यथार्थवादी युगमें केवल सुन्दर केवल शिव केवल सत्य को ही कलाका साध्य नहीं माना जा सकता। कला वही ह जो इन तीनों को एक दूसरेके पूरकके रूपमें चित्रित कर। जीवनका सतत विकास सतत कुण्ठाओंको ही तो देन ह और नयी कविताके दपणमें अगर हम बिना झिझकके अपनी कुण्ठाओंको नग्न रूपमें देखकर अपने वास्तविक स्वरूपको जान सकें तो यह आजके कविकी सबसे बड़ी उपलब्धि होगी। प्रस्तुत सकलनकी रचना उजला कबूतर मर इस कथनका अच्छा उदाहरण ह।

यह सही है कि 'अंधा चाँद' की कविताओंमें परम्परागत काव्योचित शिल्पका विघटन हुआ है पर अगर शिल्प अपने मूल अर्थमें सहजताका ही पर्यायवाची है तो यह विघटन काव्यके लिए स्वस्थताका ही चिह्न है अस्वस्थताका नहीं। छिद्रान्वेषियोंके लिए तो आलोचित कविकी इन पंक्तियोंको ही दोहरा भर देना अलम् होगा 'दरारोंसे झाँकनेवाली आँखें खुले दरवाजोंसे नहीं झाँक सकतीं।'

नयी कवितामें निहित वयक्तिक चेतना रूढ़ और परम्परागत दायरोंसे विमुक्त होकर सपनीले इन्द्रधनुषोंकी छाँहमें सत्यके आवर्तोंको आलिंगनमें भरती हुई सरित गतिसे आज जिस सामूहिक चेतनाके पारावारकी ओर अग्रसर हो रही है यह अत्यन्त शुभ लक्षण है। इस गतिशीलतासे उस व्यापक नैतिक दायित्वका उदय अनिवार्य है जिसकी ओर युग-मानवके तृषित नेत्र दीर्घकालसे लगे हुए हैं। इस अनिवार्यतामें 'अंधा चाँद'के कविकी अटूट आस्था है तभी तो वह कहता है कि 'यदि तुम्हारा मन टूटा हुआ है तो धरतीके टुकड़े तो कमसे कम मत करो।' चेतनाकी परिधिका यह इच्छित विस्तार उन नये मूल्योंको स्थापित कर सकेगा जिनके साथ समस्त मानवताका भविष्य जुड़ा हुआ है।

मेरी मान्यता है कि मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक आधारोंपर स्थित नयी कविता अनुभूतिकी रस-बोधके उस चरम बिंदु तक पहुँचा देगी जहाँ संवेदना स्वयं वन्दना बन जायगी।

मेरे इस विवेचनके पश्चात जो कुछ रह जाता है वह 'अंधा चाँद'की कविताएं कहेंगी ऐसी अपेक्षा है।

रतन निवास
सुजानगढ़

— कन्हैयालाल सेठिया

० ० ० ० ०

मैंने कविताएँ लिखना क्यों प्रारम्भ किया यह प्रश्न आज भी समाधानकी परिधिसे बाहर है। हाँ, इतना अवश्य है कि अन्तरकी रिक्तताको भरने का प्रयत्न मैंने कविताओंके माध्यमसे समय समयपर किया है। वही माध्यम अथवा चीज़ संकलन रूपमें पाठकोंके हाथोंमें है। चाँदके साथ अन्धा विशेषण मैंने उसके स्वरूप विश्लेषणकी दृष्टिसे रखा है और यही दृष्टि मेरी अधिकांश रचनाओंमें प्रधानता लिये है। बस उधार लिये हुए प्रकाशसे प्रकाशित होनेकी अपेक्षा मुझे अन्धापन अधिक पसन्द भी है। क्योंकि वह सत्य है। यह अवश्य विवादास्पद हो सकता है कि वह सत्य कब कितना और किस रूपमें बाहर आये। किन्तु यह तर्कका विषय है अनुभूतिका नहीं और अनुभूति सदा वचन अगोचर ही रही है।

यद्यपि शताब्दियों और सहस्राब्दियोंके बाद भी चाँद अपना अन्धापन दूर नहीं कर सका है फिर भी आत्मतोषका विषय इसलिए है कि आँखों वाला आदमी वहाँ पहुँचनेके प्रयत्नमें है। दूसरमें उसके चक्षुष्मान् होनेके प्रयत्नमें जगत्को हर बार आलोक भी मिला है और उस आलोकके प्रत्युत्तरमें चाँदको हर कण्ठसे अभिनन्दन भी।

कविताओंकी भाषा मैंने सरल हिन्दी रखी है। कविता अपनी भाषाकी दुरूहतासे जन मानससे अलग छिटक जाय यह मुझे पसन्द नहीं। आजकी नयी कवितामें जो सबसे अधिक अभाव प्रतीत होता है वह यही कि वह भाव और भाषा शैली दोनों ही दृष्टियोंसे जन साधारणसे बहुत-बहुत दूर जा रही है। परिणामतः जन मानस कविके पाण्डित्यसे अवश्य अभिभूत है लेकिन भावोंके साथ उसका बिलकुल तादात्म्य नहीं। दूसरमें कविता नयी और पुरानीके इस द्वन्द्वमें जन मानसमें साहित्यकार जगत्के प्रति एक

अनास्थाका भाव भी उत्पन्न कर दिया है। अतः यह अत्यन्त अपेक्षित है कि बिना किसी आत्म प्रतिष्ठाकी भावनाके कविता प्रतिष्ठाकी कोई सनातन विधा जनताके समक्ष आये। लय-गीत तुकान्त अतुकान्त आदिको समान रूपसे मैंने सम्मान दिया है।

श्रद्धेय गुरुदेव आचार्यश्री तुलसीकी महान् अनुकम्पासे मैंने जो साहित्य जगतमें प्रवेश पाया वह उन्हींका प्रसाद है। इस अवसरपर राजस्थानके अग्रणी कवि श्री कन्हैयालाल सेठियाको भी विस्मृत नहीं कर सकता जो मेरे काव्य प्रणयनमें मार्ग दर्शन करते रहे हैं।

मेरे काव्यका मुख्य लक्ष्य स्वान्तः सुखाय रहा है इसलिए मुझे विश्वास है कि वह औरोंको भी अवश्य तृप्ति देगा।

बीकानेर
२१ सितम्बर १९६४

— मुनि रूपचन्द्र

सकेतिका

•

अन्धा चाँद

१

पूनम की रात
सपनो की नीली घाटी पर
मुसकराते हुए अधे चाद ने
धरती का आलोकित करने का दम्भ अवश्य किया
कि-तु वह अपना अ-धापन दूर न कर सका
तभी एक दिन सुना
कि अमावस ने उसकी मुसकान को निगल लिया।

जब बीत गयी बरसात
सपनो की नीली झाडियो के बीच
बेचैन लेटा प्यासा सरोवर
जीवन भर देता रहा शीतल जल
थके मादे, व्याकुल पछी कुर को
कि-तु वह अपनी प्यास दूर न कर सका।
तभी एक दिन सुना
कि उसका दिल दरारा म छिटक छिटककर टूट गया।

फिर उस शारदी पूनम के दिन सब ने देखा
कि अ-धा चांद
सरोवर के उजले जल म झाकने का अभिनय कर रहा है
और सरोवर उस चांदनी के उजाले म
अपनी प्यास की गहराई आक रहा है।

२

खेत की मुण्डेर से उठता हुआ
पथराया अन्धा चांद
सरोवर के उथले जल तक पहुँचते-पहुँचते
इस तरह मुसकराने लगा
जैसे कि सृष्टि का समस्त सौन्दर्य उसी में से टपक रहा हो
लेकिन कितनी पस्त थी उसकी वह मुसकान !
जिसने छीन ली थी सरोज की सहज निश्छल मुसकान,
हो गया था जो कान्ति-हीन, विभ्रान्त, म्लान
चांद ने किरणों से सहलाया भी उसका तन
रात रात भर
पर सरोज ने उसका यह चुराया धन जानकर
नहीं दिया उसको सम्मान
नहीं खोले अपने मसृण कोश सम्भ्रान्त प्राण
पर इस रहस्य से चांद आज भी है अजान
क्योंकि वह तो आखिर
बेचारा पथराया अन्धा चांद !



२

चुरायी हुई रोशनी से रोशन
चाँद की दप भरी चाल पर
देखो तो सही ये सितारे कितने हँस रहे ह ।

इसमें सूरज का कोई दोष नही
क्योंकि हम जानते हैं
कि हर चारण की खुशामद ने
अपने मालिक का प्यार पाया है
और यहा तक माना जाता है
कि जिस इसान ने खुदा की जैसी बदगी की
उसने वैसा ही अपना ससार पाया है
इठलाती लहरा के मदमात नाच पर
देखो तो सही य किनारे कितने हँस रह ह।

अब ता एसा लग रहा है
कि जो बाहर से जितना अधिक चमकता है
वह भीतर उतना ही अधिक कालापन लिय है
जा बाहर से जितनी अधिक सम्पन्नता दिखलाता है
वह भीतर उतना ही अधिक दिवालापन लिय है
दुबल और लचील कधा पर
अधिकारो का भार देख कर, देखो तो सही
उठते हुए उँगलियो के व्यग्य इशारे कितने हँस रह है।

चाँद ! यदि तुम आज

अपने सामर्थ्य से गगन में इतराते
तो शायद तुम्हें यों लज्जित नहीं होना पड़ता
और सूरज को भी आमन्त्रणों के बहाने
तुम्हारे लिए रात रात भर यों रोना नहीं पड़ता
देखो तो सही—
तुम्हारे झूठे अहम् को चुनौती देने
ये धरती के अंगारे भी कितने हँस रहे हैं!



४

लहरीले पानी में तुम्हारा झिलमिलाता चेहरा
जो कि जितना ऊँचा आकाश में ठहरा
उतना ही नीचा पानी में गहरा
किन्तु मैं अभागा
न उस ऊँचाई तक जा सकता हूँ
और न तुम्हारी गहराई को पा सकता हूँ
तो फिर तुम्हें यहीं से प्रणाम कर लूँ ?
युगों युगों से तरसती इन पुतलियों में
तुम्हारा बिम्ब यहीं से भर लूँ ।



५

इन उमडते घुमडते बादलो का इस आसमान म आना
तुम मान रहे हो कि किसी के
आन्तरिक विद्राह का यह अन्तिम परिणाम है
किन्तु मै ता सोच रहा हू
कि किमी क अन्तर की कल्पता का यह अतिम उफान है।

तो इनको तुम उमडने दा, बरसने दो
इसलिए कि जिसस दिल की कालिख गल गलकर ढल जाये
और वही कालिख किन्ही सूनी आखा का काजल बने
जिसस कि किसी का उजडा सुहाग फिर स फल जाये
इन सावन भादा भरी आखा को देखकर
तुम कह रह हो कि किसी की
तडपती आहा का यह अतिम परिणाम है
किन्तु मैं ता साच रहा हूँ
कि किसी पौरुष की क्लीवता की यह अतिम पहचान है।

ता इन आहा का तुम पानी बनकर बह जाने दा
जिसस कि तुम्हारा पौरुष कवल पत्थर रह जाय
और वही पत्थर किसी मन्दिर की कोई मूरत बने
जा कि इस स्वार्थी मानव का
बिसरी टूट करुणा की कहानी एक बार फिर कह जाये
इस धधकत टूए ज्वालामुखी का दख कर
तुम मान रहे हा कि किसी
दबी हुई चिनगारी का यह अतिम परिणाम है

पर मैं तो सोच रहा हूँ
कि किसी को सोयी हुई चेतना का यह अंतिम सम्मान है।

तो तुम अपनी चेतना को आग बन कर उमड़ने दो
जिससे कि हर पिछड़े दकियानूसी विचार उसी में जल जायें
और वही आग किसी उजड़ी पगडण्डी पर चिराग बने
जिसके कि उजाले में बहुत समय से भटकने
किन्हीं चरणों को शायद मंजिल का रास्ता मिल जाये
सूरज के आते ही चाँद और तारों का यों छिप जाना
तुम मान रहे हो कि
उनकी दुर्बलता का यह अंतिम परिणाम है
पर मैं तो सोच रहा हूँ
कि यदि कोई समझे तो सूरज का यह सबसे बड़ा अपमान है।



६

झरोखे म बठा उदास कबूतर
भीगी पलको से
कभी बाहर झाकता है कभी भीतर झाँकता है ।

वह देख रहा है
कि भीतर की दुनिया उजाड दी गयी है
अब यह महल खण्डहर है सुनसान है
और बाहर की दुनिया बस-बस कर भी उजड रही है
क्योंकि नीव खोखली है और आदमी बेजान है
पुराना मकान ढह रहा है, नया बन नही रहा ह
इसलिए इन दो खम्भो के बीच
लटकते हुए तारो पर ही अपनी जिन्दगी बिताने को
वह कभी इधर झाकता है, कभी उधर झाँकता है ।

वह सोच रहा है
कि आत्मियत वह चीज है
जो उजडे हुए को बसाना जानती है
और जो रास्ता भूलकर भटक गये हैं
उन्हे सीधी-सी पगडण्डी बताना अपना फर्ज मानती है
लेकिन आज जो आदमी है
वह आत्मियत नही चाहता
खुद तो उजडा हुआ है ही
औरो को बसता हुआ भी देखना नही चाहता ।
धरती खिसकती जा रही है आकाश भागा जा रहा है

वह बेचारा सहारे की टोह में
कभी नीचे झाकता है, कभी ऊपर झाकता है।

शायद वह अपने नभलोक को छोडकर
आज मन ही मन पछता रहा है
और इस आदम की डरावनी शक्लें देखकर
अपना घायल शरीर ढीला किये सुस्ता रहा है
पर वह उड नहीं सकता, क्योंकि यह मनुष्य लोक है
यहा वे पांख तोड दी जाती हैं
जो उडने की कोशिश किया करती हैं
और वे आखें फोड दी जाती हैं
जो इस घरौंदे की सीमा को लाँघकर
बढने की कोशिश किया करती हैं
इसलिए वह लाचार
कभी आखें मूँदकर झाकता है, कभी खोलकर झाँकता है।



७

आस्था की इन गाया को
जडता के खूँटे स मत वाधो तुम
कि तु भटकने दो इ ह
बीहड की इन टेनी मेनी पगडण्डिया म
और चरने दो इ ह खुल चरागाहा म
साझ होते होते
ये स्वय घर का रास्ता ल लेंगी।



८

कभी गीता से ही प्यार था
बस, वही मेरा ससार था
लेकिन आज धरती की हर गूँज मेरी आवाज़ है
जिसको कि कहीं से भी सुना जा सकता है
और मेरे रूप का यह अदाज है
कि कहीं मे भी देखी जा सकती है उसकी तसवीरें
फिर मुझे कोई गुमराह कर सके यह कब सम्भव है
छिपकली पतगा को निगल सकती है
पर प्रकाश को भी निगल जाये यह असम्भव है
बस मेरी दीप शिखा का विराम करने दो
और तिमिर की सूनी गोद को फिर किलकारी स भरने दो।



९

धान के दानों का प्रलोभन देकर
मन उस कबूतरी को वहाँ से उड़ाना चाहा
जो अपने अण्डों को
ममता का सेक दे रही थी
पर उसकी पलकों के
उस एक निमेष ने ही मुझको परास्त कर दिया
जिसने कि मुझको समझाया
कि यों शरीर की तृप्ति के लिए
कहीं अपने आत्मीय को दूर अरक्षित नहीं छोड़ा जा सकता
शरीर का शरीर से बन्धन
तो आखिर कब तक निभता है टूट ही जाता है
पर आत्मा आत्मा से भी एक बन्धन होता है
जिसके लिए लाख कोशिश की जाय
फिर भी कभी तोड़ा नहीं जा सकता।

१०

धरती का लाडला
स्वर्ग के देवता का बलिदान चाहता है।

उसको अशान्त ज्वाला में अपना सब कुछ होम कर
और तो क्या, अपनी ज़िन्दगी को भी वीरान बनाया
उसकी खोखली जड़ों में अपना खून सींच सींचकर
दुनिया की आंखों में उसे भगवान् बनाया
पर आज वह वरदान रूप में
और कुछ भी नहीं, केवल इन्सान का सम्मान चाहता है।

उसे नहीं चाहिए वह देवत्व
जिसमें स्वच्छन्दता हो, विलास हो
और पूज्यता के नाम पर मानवता का उपहास हो
किन्तु सन्देहों की स्याही से पुता हुआ
और उसकी अरथी के नीचे
एक मासूम शिशु की तरह जुता हुआ
वह उससे केवल एहसान की पहचान चाहता है।

उसने देख लिया
कि धरती क्या है और आसमान क्या है ?
और उसने जान लिया
कि इन्सान क्या है और भगवान् क्या है ?
धरती राख में लिपटा हुआ वह अंगारा है
जिसने कि इस चाँद और सूरज को जलना सिखाया है,

इसान   वह वसासो था कि वह सहारा है
जिसने कि भगवान् को चलना सिखाया है
आज वह विनम्र किन्तु अधिकारपूर्वक
अपने नग प्रश्नो पर समाधान का परिधान चाहता है ।



११

जिन्दगी की मनहूस आवाजें
मौत से भी ज्यादा भयंकर होती ह ।

मौत का तकाजा है
कि उसका पैगाम सुनकर
यह प्राणा का पछी बिना छटपटाये, स्वय चला जाये
और जिन्दगी का तकाजा है
कि उसका हर अरमान इस आदम की
जीवित लाश को सुलगा-सुलगाकर जला जाये
धुओंके बाद भ सुलगती हुई आग
धधकते हुए अगारोंसे ज्यादा भयकर होती है ।

खण्डहर का पत्थर गा रहा है
कि दिन भर के श्रम से थका हुआ
कोई पौरुष चुपचाप यहाँ सो रहा है
और महला से कोई स्वर आ रहा है
कि रात दिन के विलास से ऊबा हुआ
कोई पौरुष सिसक सिसककर यहा रो रहा है
शायद, सिसकती हुई अमीरी की आह
गरीबी की अनब्याही चाहा से ज्यादा भयकर होती है ।

पर यह आदमी भी बडा अजीब है
जो कि बिना जरूरत या जिये ही जा रहा है
और विष भरे समन्दर को होठा पर लगाये

ग्वर वनने की धुन म उम पिये ही जा रहा है
पर उम नही मालूम
कि तिनका की आट म छिपी हुई सर्पिणी
गल म लिपटे सापसे ज्यादा भयकर हाती है।



१२

घास-फूस, खपरैल का मेरा घर
जहां बरसात म पानी रिस रिसकर भर जाता है
शीत मे जहा का हर तिनका ठिठुर जाता है
गरमी म जहा सूरज रोशनी नही, आग बरसाता है
आधी का सहारा पाकर
जहां धूल का हर कण अपना साम्राज्य बताता है
काटा की बाड से घिरा हुआ वह मेरा घर
जहा म रहता हूँ अकेला
शीत, बरसात, ताप, झझावात
जिसने आज तक सब कुछ हँस हँसकर झेला
पर लाग देखते हैं
मेरी झापडी को अपशकुन की नजरा से,
क्याकि पास के मन्दिर की छाह जो पडती है इस पर,
पर मैं सन्तोष कर लेता हूँ यही सोचकर
कि चलो, परछाई मन्दिर की ही पडती है
पुजारी की तो नही !



१३

परम अनागत की रेखा म सिमटा जीवन
वतमान का बन्धन कैसे सह सकता है।

अपने ही इस पल-जाल म उलझा पछी
स्वण स्वप्नमय दूर क्षितिज के लिए तरसता
किन्तु विवशता के घन नभ मे मँडराते नित
स्वय सत्य भी लिये आवरण भ्रान्त विचरता
आँख मिचौनी यही आज तक छलती आयी
मजिल का उत्साह किन्तु क्या ढह सकता है ?

हर चरण लक्ष्य की राह दिखाने को आतुर
हर राह चरण की अमर महत्ता बतलाती
है किन्तु मनुज दिग्भ्रान्त पथिक-सा भटक रहा
यह मग मरीचिका मात्र बनी पुरखो की थाती
इसलिए सत्य की नग्न विभाषा का इच्छुक जग
मृत का भी अस्तित्व कभी क्या रह सकता है ?

लहरो का उत्थप सिन्धु को प्रिय लगता है
किन्तु बने आवत कभी यह इष्ट नही
सागर तो है स्वयं समाहित इन लहरो म
बन जाये उन्मत्त नही यह शिष्ट कही
जिससे हो उद्भूत वही हैं धाराए ये
वही स्वयं उनम घुल घुलकर उह सकता है।



१४

मैं सूनी-सी रात,
प्रात बनकर तुम आये
इसलिए तुम्हारा अभिनन्दन।

फूलों की जो हाट वहाँ पर भँवरों
की तो भीड स्वय ही लग जाती है
दीपक की मरहम से तन के घावों
की चिर पीड स्वय ही भग जाती है
मुरझे सब जलजात,
किरण बनकर तुम आये
इसलिए तुम्हारा अभिनन्दन।

मत पूछो तुम कथा तारों की, इसमे
और जलधि मे कोई प्यार नही है
मझधारा मे उठना गिरना, गिरना उठना
इसका बस ससार यही है
तारो भरी बरात,
चाद बनकर तुम आये
इसलिए तुम्हारा अभिनन्दन।



१५

तारा की झिलमिल से
कोई बिछुड़ा दिल यदि मिलता है तो मिल लेने दो।

तुमने था जो दीप जलाया
सांझ हुई तो वह घबराया
तम किरणों की घुल मिल में
नव-दीपक कोई जलता है तो जल लेने दो।

तुमने था जो फूल खिलाया
वह तो पतझर में मुरझाया
मन सावन की रिमझिम से
यदि नया सुमन कोई खिलता है खिल लेने दो।

नभ से जो सरिता है आयी
उससे प्यास नहीं बुझ पायी
आंसू की निर्मल कल-कल से
कोई गंगा ढलती है तो ढल लेने दो।

अब तक जो हैं गीत सुनाये
वे मेरे थे या कि पराये
उन गीतों की सरगम से
यदि कोई पीड़ा हंसती है तो हंस लेने दो।

१६

प्यार सदा अनजानी गति से ही बढ़ता है।

यह दीप शलभ,
यह मेघ मोर,
यह विकल चाँद, व्याकुल चकोर
क्या यही प्यार ?
जो मिट जाये उलझाकर अपनी प्राण डोर
क्या इसीलिए ही मानस का
यह प्यार शाण पर चढ़ता है।

यह भ्रमर-फूल,
यह लहर-कूल,
कोमल पग-तल, ये कठिन शूल
क्या यही प्यार ?
जो प्रतिपल तत्पर सहने को कुछ नयी भूल,
बस इसीलिए ही जगती का
हर भाव प्रेम का पढ़ता है।

सब पन्थ शून्य,
सब चरण शून्य,
अपने में आकुल पाप-पुण्य,
हाँ, यही प्यार
जो बन जाये औरों से हटकर स्वयं गम्य,
इसी प्यार में मन मेरा
अपनी आकृतियाँ गढ़ता है।

१७

माप नही सकता जो एक बूँद की गहराई भी,
तो फिर सागर की गहराई कैसे माप सकूँगा।

बिना किसी आधार आज तक म चलता आया हू
बिना किसी आसार आज तक म पलता आया हूँ
सच मानो तुम बिना स्नेह ही जलता मैं आया हू
यो अपने को अपने स ही छलता मैं आया हूँ
आक नही सकता जो एक पलक की सच्चाइ भी
तो फिर जीवन की सच्चाई कस आक सकूगा।

सतरगे स्वप्नो पर ही तो भावी सदा उभरता
और कामनाओ का पछी नभ क पार उतरता
यह अबोध सा स्नेहातुर मन अपनी प्यास बुझाने
क्या अवनी के अचल म छिपने को आज मचलता
साध नही सकता जो एक चित्त की परछाई भी
तो फिर जगती की परछाई कैस साध सकूगा।

लहरा की निष्क्रियता ने ही यह आवत्त बनाया
मानव की अन्तर छलना न यह ससार बसाया
मैं भी राही तुम भी राही निश्चल कौन यहाँ पर
जिसने मायावी जीवन का आदि अन्त है पाया
लाघ नही सकता जो एक जन्म की सीमाए भी
तो फिर इस असीम अन्तर का कसे लाघ सकूगा।



१८

मेरी पलकें – नींद से जूठी
जितनी वार किरणा से रूठी
लगा मुझे
जीवन सपना है
सब कुछ पराया है, कौन अपना है
और फिर यह मन इस ससार से ऊब जाता है
जैसे कि दिन भर आग बरसाने वाला सूरज
साझ को डूब जाता है ।

मेरी पलकें आँसुओ से जूठी
जितनी वार इसकी सीमाएँ टूटी
लगा मुझे जीवन तो बादल है
जो कभी भी, कही भी बरस जाये
धरती का कण कण सरसाता है
जैसे कि साँझ मे परास्त होने वाला सूरज
सुबह अपनी शक्ति बटोरकर फिर आग बरसाता है ।

पता नही फिर सत्य क्या है ?
आग या पानी ?
बुढ़ापा या जवानी ?



१९

धूल म लिपने
धरती के लाडल ने
जब अपने कर्तृत्व के देवता को
श्रद्धा भर फूल चढ़ाये
तो गगन के नखत, चाद और सितारे
सभी खिलखिलाये
पर दूसरे ही क्षण उ होने देखा
कि वह माटी का पुतला
अपने अजेय कतत्व के साथ
धरती की देहली को लाघता हुआ
उस अधकार आच्छन आकाश को
उसी धूल से माज रहा है
कि जिससे उसका कालुष्य मिट जाये
तो उस पर अपने पौरुष का
नया चाद और सूरज उगाये।



२०

मरघट के उस अंतिम छोर पर
दुनिया की आंखों से दूर कोई सो रहा है।

यह कब्र है
किसी इंसान की ही
क्योंकि, शायद, कब्रें इंसान की ही हुआ करती हैं
और जो आदमी जिंदगी से हार जाते हैं
उनकी कब्रें ही फिर भगवान् के चरण छुआ करती हैं
उसी के किनारे खड़ा खड़ा मैं देख रहा हूं
कि वह कब्र इस मानव पर हंस रही है
और मानव अपने पर रो रहा है।

पर यह क्या ?
उसमें गड़ा हुआ वह मुरदा तो हंस रहा है
जिसकी हँसी में छिपा है इंसान के लिए
एक करारा व्यंग्य, एक उपहास।
और जिसके कफन के नीचे ढके हैं
घृणा भरे अभिशाप, जिंदगी के लिए अविश्वास।
फिर भी आश्चर्य ! कि युगों युगों से
यह प्राण इन बेतरतीब लाशों का बोझ ढो रहा है।

आने वाला जमाना
जो कि मानवता का हामी होगा
शायद, मरघट का अधिक सम्मान करेगा

इसी को वह सबसे बडा पुण्य धाम मानेगा
और उसके साल गिरह का मेला भी यही भरेगा
क्योंकि यही स्थान अब शेष बचा है
जहा इ सान अपने झूठ दम्भ को छोडकर
आज भी इ सानियत के बीज बो रहा है।



२१

सामने छितरा है टेबल पर आर्ट पेपर
बिलकुल कोरा, निपट,
जितने कि तुम,
पास ही बिखरे हैं रंग —
काले, पीले, नीले, हरे और लाल
प्यालों को कुरेदती हुई हाथ में तूलिका
और कुरसी पर निढाल गिरा हुआ
मेरा चित्रकार व्यक्ति
पर जैसे सब कोई एक दूसरे से रूठे हुए
क्योंकि तुम नहीं थे
तभी हवा के नाजुक झोंके से
सरसरा उठा वह उदास आर्ट पेपर
उसके साथ ही चिड़चिड़ा उठा मेरा चित्रकार व्यक्ति
क्योंकि तुम नहीं थे।



२२

माँ कृपा करो,
अब मत आओ तुम इन आखों में काजल
यों ही मेरे सहज रूप को ढँकने खातिर
देखो तो तुम
आते रहते कितने कितने सन्देहों के बादल।



२३

म जला —
जीवन भर जला
इसलिए कि जिसस
मरी कालिख धुआ बनकर उड जाये
और उसके उजाल म
तुम्ह तुम्हारी मजिल का रास्ता मिल जाय
पर तुमने यह क्या किया
जो मेरी रोशनी के उपयोग के बजाय
मेरी कालिख को आखो म आंज लिया
खर, अब भी सोच रहा हू
कि इसस भी यदि
तुम्हारी बन्द आंखें खुल जाय
तो सम्भव है भटकना न पडे
तुम्ह तुम्हारी मजिल का सही रास्ता मिल जाये।



२४

सडक के दोनो ओर
हजारो अजनबी चेहरे जा रहे है, जा रहे है
किन्तु लगता है ऐसा कि
जैसे कोई मनचाही मूरत खोयी-सी है।

पैरो का काम चलने का है
वे चलते है
पर उन्हे मंजिल का कोई ज्ञान नही है
दीपक का काम जलने का है
वे जलते है
पर रात और दिन की उन्हे कोई पहचान नही है
हजारो परिचित नजरे मेरे पास से गुजर रही हैं
लेकिन लगता है ऐसा कि
जैसे हर एक मूरत रोयी सी है।

इसलिए मैने अपनी डायरी लिखना छोड दिया है
क्योकि जो लिखी हुई है
उन्हे पढने से लगता है कि
असलियत कम है और तसवीरबाजी ज्यादा है
पता नही इस मानव की बुद्धि को क्या हो गया है
कि उसके हर एक कार्य मे
सच्चाई कम है और नकलबाजी ज्यादा है
स्वर्ग की हजारो सून्य आँखें इस धरा की ओर झाँक रही है
पर लगता है ऐसा कि

किन्तु जब तक इन्सान के दिल में करुणा है
एक दूसरे के लिए प्यार है
तब तक इन्सानियत का सम्मान नहीं घट सकता
और सूरज चाहे कितनी ही आग क्यों न बरसाये
पर शहीद-दीपक का अहसान कभी नहीं मिट सकता
हजारों घायल पाखें उड़ने की कोशिश कर रही हैं
लेकिन लगता है ऐसा कि
मंजिल तक पहुँचनेवाली काई-सी है।



२५

गुनाह जो हो गये तुमसे
सपन जो खो गये तुमसे
पर उसकी मरहम के खातिर
किसी अहसान का भी भार कभी ढोया नही जाता।

तुम हो क्या, गुनाहा के झूल म धरती झूल रही है
तुम छिपा न पाये उसको बस समझो इतनी-सी भूल रही
या फिर मान लें ऐसा
कि मौसम आसुआ को मित्र ! तुम्हारे अब नही अनुकूल रही
तो अब पोछ लो आखें
कभी पथरायी आखो से विवश रोया नही जाता।

तुम समझो जिन्दगी तो यह कि चलती रही गुनाहा पर
तुम समझो जिन्दगी तो यह भटकती रही गुमाहा पर
या फिर मान लें ऐसा
अधिकार दीप की बाती
कि जलती रही सदा गुनाहा की निगाहा पर
तो ऐसी परवश हालत म
लिये पहचान का अंगार पलक भर भी
अनमोल पलका स कभी सोया नही जाता।

तो अब पखुडा पाखें उडो तुम साथ म मैं हूँ
यदि पतवार नही तो क्या तुम्हारे हाथ म म हू
मत पूछा तुम कि नभ निस्सीम का फिर माप क्या होगा

कि जब हम छोड देते पुण्य, भला फिर पाप क्या होगा
नही, तो तुम ही बतलाओ
किसी झूठ अहम् के खातिर
स्वय की चेतना को या कभी खोया नही जाता ।



२६

मन्दिर म पुजारी ने जब
घण्टा बजाया
तो कहते हैं कि भगवान् भागे आये
इधर वक्षा के झुरमुट म
भेडा के गल म बधी घण्टियो
की टन टन सुनकर
वह गडरिया भागा आया
तभी प्रश्न उभर आया
कि एक के उत्तर म भगवान्
और दूसरे के उत्तर म गडरिया,
इतना अन्तर क्या ?
कहा किसी ने तभी
भगवान् और गडरिया कहा थे
वह तो मन का ही विश्वास था
जो कि एक बार भगवान् बनकर आया
और दूसरी बार गडरिया ।



२७

मैं ?
आम की झुकी हुई डाल पर
झूलने वाला
वह अधफूटा घडा
जिसम कि कोई खूबसूरती नही है
पर इतना जरूर है
कि पानी से भरा हूँ
अत मेरे पास आने वाला
कोई भी थका मादा पछी
कभी भी प्यासा नही लौट सकता ।



२८

आग म तपे खरे सोने-सा
तुम्हारा जीवन
इतना अनाविल, पवित्र ओर दीप्तिमय
कि व्यवहार की खाद का उसमे मिश्रण नही हो सका
बस, यही कमी रह गयी थी
कि जिसके कारण
तुम किसी सौन्दय के काना का कुण्डल न बन सके
सत्य हमारा आदश हो सकता है
पर उसकी नग्नता निभायी नही जा सकती
आखिर ससार म ससार के रूप म ही जिया जा सकता है
जिसके लिए रसना अयोग्य ठहरती है
उसे केवल आखा से ही पिया जा सकता है
फिर भी सामजस्य की कोशिश की जाती है
सोने और खाद के बीच म,
तुम्हारे और व्यवहार के बीच म,
अच्छा है, इसस भी यदि किसी की लाज बच जाये।



२९

देखो इन दरवाजो को खोल दो
क्योकि दरारो म से झाकने वाली आखें
खुले दरवाजो से नही झाक सकती ।

आदमी की कमजोरी कहूँ
या कि विशेष खूबी
कि वह प्रत्येक रहस्य को खोलना चाहता है
जब कि सच तो यह है
कि अपने ही घिसे पिटे बाटो से
हर दूसरे आदमी को तोलना चाहता है
दिल की आवाजो को बोल दो
कि मुँह पर आने वाली रुबाइया
दिल की आवाजो का मोल नही आक सकती ।

शायद, इसलिए ही पिंजडे म बैठी
कोयल के कण्ठो म वह सुरीलापन नही होता
क्योकि उसम अ तर की आवाज के बदले
खुशामद के स्वर अधिक गाये जाते ह
पता नही इस इन्सान को क्या हो गया है
कि जितना अधिक वह सौहाद का प्रदशन करता है
उसके व्यवहार उतने ही अधिक खोखले और झूठ पाये जाते हैं
इन अनपढ गँवार नाविका को समझा दो
कि सतह पर तैरने वाली नौकाएँ
सागर की अथाह उर्मियो को बाहो म नही बाँध सकती ।

●

३२

बूँद ने
घट की सीमा को कब जाना ?
वह तो किसी प्यास को
तृप्ति का विश्वास देकर स्वयं असीम बन गयी।

लहर ने
सिन्धु की अनन्तता को कब माना ?
वह तो किसी भटकती नाव को
मंज़िल का घुमाव देकर स्वयं अनन्त बन गयी।

बस इसी का नाम पौरुष है
जो न किसी सीमा में बंधता है
और न चाहता है किसी अनन्त का आश्रय
किन्तु थके-माँदे हारे जीवन को
गति का धन देकर बन जाता है अक्षय।



३३

सखे !
जीवन के बहुत-बहुत लम्बे वाक्य पर
तुमने जो पूर्ण विराम (।) लगाना चाहा
उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद ।
लेकिन नहीं सोचा तुमने
कि मेरा वाक्य
केवल शब्दों के डण्ठल ही नहीं बटोर रहा है
पर वे अर्थ भरे बीज सिमटे हैं उसमें
जो कहीं भी गिर जायें
वहाँ की धरती को सरसब्ज बनाने की क्षमता रखते हैं ।



३४

मुझ अपनी आखो पर विश्वास न हुआ
जब मैंने देखा
कि मन्दिर के दालान म बठे भक्त लोग
बडे ऊचे स्वर म राम धुन गा रहे हैं
जब कि उधर मन्दिर के पिछल दरवाजे से
भगवान् उलटे पैरो भागे जा रहे हैं
चरण छूकर कांपते हुए पूछा मैंने
भगवन् ! आपका यह क्या हाल ?
तो उन्होने हाफते-हाफते कहा—
रोको मत मुझ,
यहा अधिक नही ठहर सकता अब मै,
इन लोगो ने बिछा रखा है मेरे लिए पग पग पर जाल
मैं दिग्भ्रमित-सा बोला—
जाल कसा ?
ये तो आपके नाम की रटन लगा रहे हैं
आपकी मूरत पर ही वे अपना सवस्व चढा रहे हैं।
अबकी बार व झुँझलाकर बाले—
हाँ इसलिए ही तो
लोग उनमे ईमानदारी पूवक ठगे जा रहे हैं।
किन्तु मेरा अब निणय है
कि मैं उस नास्तिक के यहा भी रहना पसन्द करूगा
(जो वास्तव म नही,
लकिन इन हठ धर्मिया ने जिसको बना रखा है)

जो अपने प्रति सच्चा है और शुद्ध है जिसका आचार
पर यहा मे अब नही टिक सकता
जिन्होने धम और इश्वर के नाम पर
फैला रखा है इतना इतना भ्रष्टाचार
सुनकर म अवाक रह गया
किन्तु फिर भी अपनी आखो पर विश्वास न हुआ
और मैंने ध्यान से देखा
कि मन्दिर के दालान म भक्त लोग
बडे ऊँचे स्वर से राम धुन गा रहे ह
जब कि उधर मन्दिर के पिछल दरवाजे से
भगवान् उलटे पैरा भाग जा रह हैं।



२५

यह कलम का जूठा हुआ कागज़
इसको छोटे छोटे टुकडा म फाडकर फेंक रहा हूँ
जिससे कि इन दुनिया वाला की
भूखी नजरें इसको कहो लग न जायें।

मेरा पडोसी मुझस कह रहा है
कि तुमने वसा लिखा ही क्या
जिसको कि दुनिया एक अपराध मानती है
पुण्य पाप की परिभापा उसक लिए यही है
कि जो विचार उसके गल उतर जाये वही पुण्य है
इसके अलावा वह सबको पाप मानती है
यह सलोना लाडला दिल का टुकडा
इसके मुखडे पर म काजल की बिन्दी लगा रहा हू
जिसस कि इन दुनिया वाला की
नगी नज़र इसको कही लग न जाय।

यह तो लोहे का बाजार है
सोने की यहा निमम हथौडा स
हमेशा ही पिटाई की जाती है
कोलाहल से आकुल है यह समूची धरती
इसस छुटकारा पाने क लिए ही
आज इस गरीब चाद पर चढाई की जाती है
जिनको कि यह जग नही समझ सकता
उन अवाछित कोमल कल्पनाओ का

मन के अथाह समुन्दर म छिपा रहा हूँ
जिससे कि इन दुनिया वालो को
बेरहम नजरें उनको कही लग न जायें।

मैंने जो भी लिखा है
हृदय से लिखा है
इसलिए वह अटल है, असीम है
ता फिर यह ससीम आदमी
उसका मूल्य कैसे आक सकता है
मने जो भी गाया है
हृदय से गाया है
इसलिए वह किसी सरगम म बधा नही है
ता युग का यह बेसुर बजू बावरा
उस कैस स्वरा म बाध सकता है
अपने अनगाये गीता को
अब मन ही मन गुनगुना रहा हूँ
जिससे कि इन दुनियावालो की
गवार नजरें इसका कही लग न जाय।

•

३८

प्राणों के ये सूक्ष्म बन्ध
इस चेतनता का भार लिये या ढील न हो जायें।

हर व्यक्तित्व स्वयं की दुर्बलताओं से हो घायल
जन निधि का संसार लहर की हलचल का नित कायल
मुखरित हो न वेदना छन्द
बन अनुकम्पित नयन किसी के गील न हो जायें।

अणु-अणु का सौन्दर्य सत्य का अवगुण्ठन-सा लगता
लिये समर्पण बूँद-बूँद का जलधर निज को ठगता
अधिकारों को लिये गन्ध
इस शीत-दाह से वन के पत्ते पील न हो जायें।

मन का कम्पन धरती की ज्वाला को लिये हुए है
मन का स्पन्दन विषधर की हाला को पिये हुए है
किन्तु रहे आशा अमन्द
नहीं साध्य के विकसे उपवन रेतील हो जायें।



३७

हाथ का बिस्किट
छीन लिया जाये
दर्द नहीं,
फूल बनने को आतुर
कली को बीन लिया जाये
दर्द नहीं,
लेकिन होठों के बीच दबे बिस्किट के
निगलने पर पहरा !
फूल के द्वार पर खड़ी कली के
खिलने पर पहरा !
कितना दर्द !
सहा जा सकेगा ?



३८

जब अपनी साधना
अपने से ही रूठ जाती है,
यानी समझो,
मूंग की फली
पौध से स्वयं छिटक कर टूट जाती है
यानी समझो
इंजिन के धक्के से
गाडी की खिडकी हाथ से छूट जाती है
यानी जब अपनी साधना
अपने से ही रूठ जाती है
इसका अर्थ हुआ,
अपने से ही अपने प्रति दुर्घटना !



३९

खोखले वास म
एक रागात्मक फूँक भर दो
वही गीत बन जायेगा
खोखली माटी म
एक संवेदनात्मक साम भर दो
वही दीप बन जायेगा
खोखले सपनो म
एक स्पर्धा का भाव भर दो
वही हार और जीत बन जायेगा
और सृष्टि के इसी खाखल्पन म से
जीवन के अमित रस को झरने दो निरन्तर
सचमुच वही रसमय वतमान
भावी सन्तान के लिए
सुनहला अतीत बन जायेगा।

४०

दो आखें
जो दूर तारा की भीड म खो गयी
जिन्ह पाने यह धरती
युगा-युगा मे भटक रही है
दो पाखें
जो कि दूर अनन्त म खो गयी
जिनकी अनुपस्थिति
नभ को आज भी खटक रही है
और इन्ही आखा और पाखा के बल पर
इस अजनबी प्राणी ने
न जाने जन्म और मृत्यु के
कितने आयाम पार किये हैं
जिनके साक्षी
आकाश के नही
पर धरती के ये माटी के दिये हैं।



४१

विश्वास के देवता !
इतिहास मौन है, विवश है
और अवश है अपनी कमजोरी छिपाने में !

तुमने कहा अधिकार एक गुनाह है
बशर्ते कि उसका उपयोग ठीक से न किया जाये
और अमृत भी गरल बन जाता है
बशर्ते कि उसको ठीक से न पिया जाये
पर यह सत्य युग नहीं पचा पाता
क्योंकि अधिकार के नाम पर ही वह जीता है
ऊपर से भरा हुआ है, भीतर से रीता है
बस, इसीलिए सकुचाता है वह
आस्था के ये बिखरे फूल सजाने में ।

तुमने बताया — जन्म लेना कोई अपराध नहीं है
न ही किन्हीं दुष्कर्मों का उत्ताप है
किन्तु जीवन से मुँह मोड़ लेना हार खा जाना
व्यक्तित्व विकास के लिए सब से बड़ा पाप है
शरीर मुक्ति के लिए सबसे बड़ा अभिशाप है
इसी तथ्य के आधार पर
हम ये साधक तुम्हारे पथ पर चल रहे हैं
बस, इसी स्नेह के पारावार में
ये दीपक अहर्निश मौन-मुखर बन जल रहे हैं
जग बन जाता है भाव विभोर

तुम्हारा गीत सुनने म, सुनाने म ।

हमने तुमको देखा है, आंखो से नही
मानस की इन थिरकती पुतलियो म
तुम भी हमसे मिल हो, इस शरीर स नही
श्रद्धा की इन सरल विरल गलियो म
सच कौन कह सकता है कि तुम चल गये
दीख रहे कितने रूपो म नये-नये
मर्यादा म साधना की बीहड कन्दराओ म
और सघ की अजेय प्राणवती हर एक शिराओ म
हम तो ह खुशहाल दुनिया की इस हाट के
म दो चार दिन तुम्हारे यहा बिताने म ।*



* आचाय भिक्षु के प्रति

करने जा रहा हूँ एषणा
किसकी ?
आगमों में बिखरी हमारी प्राचीन संस्कृति की !
घट घट में बूँद-बूँद भरी संस्कृति की !
या कि कण-कण में बिखरी हुई अनबोल प्रतिकृति की ?
नहीं, नहीं मैं करना चाहता हूँ
मनुष्य के अंतर की एषणा
उसकी एषणाओं की गवेषणा
या उसके उस अलंकृत अहम् की नग्न अन्वेषणा
जहाँ कि वह हर दूसरे पर पाप का भार लादकर
स्वयं पुण्य कमाना चाहता है
शिखण्डी की ओट में गाण्डीव खींचकर
दूसरों को अपना निशाना बनाना चाहता है
घास की ढेरी में आग लगाकर—
स्वयं सलिल में छिप जाना चाहता है
पर उसे पहले यह भी सोच लेना चाहिए
कि यदि पानी में भी आग लग गयी तो ?
जिसको बुझाने का न कोई उपाय है
और जहाँ हर समर्थ व्यक्तित्व भी लँगड़ा है, असहाय है।

४३

किसी की अवश विवशताओं पर
किसी स्नेहिल ममता भरे हाथ का स्पर्श—
कितना सुखदायी होता होगा सखे !
लेकिन तभी किसी का यह सोचना
कि मेरी विवशताओं के हर घाव की रिसती पीब से
कहीं तुम्हारा स्नेहिल भाव अपवित्र न हो जाय
कितने मर्म वेधी होते हैं ये शब्द !!
कभी जाना तुमने !!
शायद नहीं पहचाना तुमने
तभी तो पृथ्वी चपटी नहीं, गोल है।



देखो आइने के सामने मत जाओ।
तुम्हारे नयन शायद तुम्हारा रूप नही देख सकेंगे।

मैं मानता हूँ कि तुम एक कुशल तीरन्दाज हो
जिसके बाणो ने उड़ते हुए
हर पछी को बडी सफलता से बीध डाला है।
लेकिन यह भी जानता हूँ कि
भगवान् बुद्ध वही बना, जिसने कि
अपने ममता भरे हाथो से पछी का तीर बाहर निकाला
देखो, कोरे झूठे लुभावने गीत मत गुनगुनाओ
तुम्हारे कान, उस गुनगुनाहट को नही सुन सकेंगे।

मुझे याद है कि
उस दिन तुमने अपने मन-बहलाव के लिए
तालाब मे तैरती मछलियो को बहुत-बहुत सताया
पर मुझे यह भी खूब याद है कि
ईसामसीह वही बना
जिसने कि एक गाल पर चाँटा लगने पर
दूसरे को भी आगे कर देने का सबक सिखाया
देखो, इन उगलियो से वीणा मत सहलाओ
इसके नाजुक तार, तुम्हारा निमम आघात नही सह सकेंगे।

ओ चन्द्रलोक की होड लगाने वाले।
शान्ति के नाम पर मानवता का सहार मत करो।

जगत् ने तुम्हारी ताकत का लोहा या ही मान लिया
पर उसके हृदय का आराध्य
भगवान् महावीर वही बन पाया
जिसने कि अपने आत्म विजय के आलोक म
संसार को अभय का दान दिया
देखो, अपने माथे कलक का टीका मत लगाओ
नही तो तुम्हारे वशज तुम्हारा चेहरा नही पहचान सकेंगे।



४५

अतीत के निविड अँधियाये गह्वर म
जव वतमान का आलोक फेंका
तो पाया यह –
कि जो वस्तुएँ जैसी थी, वैसी ही पडी हैं
वे धुधला गयी हैं केवल इसलिए
कि उनपर वतमान की परतें चढती आयी हैं
तो आज तक हमने
जो भी खोया, जो भी गँवाया
समय की इस टकराहट म
जो भी पाया, बिसराया
या अपने अहम् की छटपटाहट म
हमने जो भी तोडा, छोडा, जोडा
जिन जिन तथ्यो को जैसा भी मन म आया मरोडा
लेकिन आज ऐसा लग रहा है
कि वह जो भी था या जो भी होगा
वह सब है वतमान के सन्दभ मे से अनुस्यूत
उसके पीछे-आगे, पहले-बाद म
जो भी है कल्पना, जो भी है अनुभूत भूत
उन सबका
वतमान म ही होता है पटाक्षेप
इसके अतिरिक्त जो कुछ भी है
और कुछ भी नही, केवल काल-क्षेप ।



४६

आकाश म उडने वाली स्वच्छन्द पतंग
इन बिजली के तारा म उलझ गयी है
और बच्चे खडे खडे तमाशा देख रहे हैं।

इस पतली सी डोर के सहारे
इसने इस नील गगन म मन चाही उडानें भरी हैं
और दूसरो को धरती पर रेंगते देखकर
उसने बहुत बार व्यग्य मुसकानें भरी हैं
लेकिन आज उसी के पैर
पेड की छोटी छोटी टहनिया म उलझ गये है
और बच्चे खडे खडे तमाशा देख रहे है।

जिस किसी पतग को
उसने अपने बराबर उडते देखा है
ईर्ष्यावश हर बार उसने उसको ललकारा है
हर बार उसे काटकर नीचे गिराने का प्रयत्न किया है
और गिरती गिरती को भी
वापस नहो उठने की धमकियाँ दी हैं डाँटा है, फटकारा है
लेकिन आज वह अपनी ही डोर म
उलझ उलझ कर पछता रही है
और बच्चे खडे खडे तमाशा देख रहे हैं।

प्राय ऐसा ही होता है कि
जो आसमान म उडना सीख जाते हैं

वे धरती पर चलना पसन्द नही करते
दूसरा के कन्धा पर पैर रखकर चलनेवाल
उनकी आह भरी आवाजा पर पिघलना पसन्द नहा करत।
यही कारण है कि
मानवता का भोला अनजान शिशु
आदमी के जगल म भटक गया है
और ये जानवर खडे-खडे तमाशा देख रहे हैं।

●

४७

मन म आता बहुत बार
कि लिखा आज तक जा भी मने
जीवन के कोरे कागज पर
उस मिटा दू इस रबर से
और दोबारा लिखू कहानी इस जीवन की
उन शब्दा से रहित
जि ह लिखने स जग न अब तक पापी ठहराया
कि तु तभी समझाया मन का
ऐस भी है वण, शब्द क्या पास तुम्हारे
जा कि जगत् की पाप-दृष्टि स ह बच सकते
क्याकि पाप तो नही वण म नही शब्द म
व तो मन म ही पलते ह
और तभी मैं कलम छोडकर
पढ जाता हूँ फिर कागज का
उस मस्ती म उसी धय स
जिस मस्ती से इस कविता ने
सागर क उथल जल पर भी
खीची ह दखो तुम, कितनी रेखाए।



युग संत ! मनुज के भोलपन की लाज पहन, उन्मुक्त पुलक
भीगी पलकों में वसुधा का चिर-प्यार लिये
तुम स्वर्ग-लोक से ठिठक ठिठक कर उतरे जब सम्भ्रान्त, सजग
इस मर्त्यलोक पर अमरों का संसार लिये।

यह चांद अमा की कज्जलता में था ओझल
कुछ इने गिने तारे ही नभ में मँडराते
था सत्त्वहीन, चैतन्य रहित मानव का मन
ये श्वास स्वयं थे आते-जाते घबराते
इस महा सिन्धु की इठलाती लहरों पर निष्कम्प अतल
थी विजय पताका लहरायी पतवार लिये।

हर साँस प्राण को आशा में था सिसक रहा
हर प्राण तड़पता देव ! अमरता के खातिर
था विवश मनुज, निष्प्राण चेतना से आहत
वह नभ की बूँद-बूँद पाने को था आतुर
तुम महा प्राण ! अन्तिम साँसें कर उज्जीवित, निस्सीम गगन
से बरस पड़े नव चेतनता की धार लिये।

इस काल-पुरुष की रेखा में सिमटे जीवन को
उस असीम की ओर बढ़ाना चाहते हो
व्यवहार जहाँ पर तरल रूप से बह जाता

उस चरम सत्य को व्यक्त बनाना चाहते हो
इसलिए तुम्हारी पावन धवल जयन्ती पर, उत्साह अमित
ले, श्रद्धा नत है सकल विश्व उपहार लिये।*



---

* आचार्य श्री तुलसीके धवल-समारोहपर पठित

४०

किसने छितरायी इस सूने उजडे
आंगन में
तुलसी की ये महकदार पत्तियां
जैसे कि चिरकाल से परित्यक्त
भूली बिसरी वीरान कब्र पर
किसी ने रख दी हों टिमटिमाती मोमबत्तियां
मैंने सोचा
कि यह मेरा कोरा स्वप्न है
तभी डाल पर बैठी कोयल कुहुक उठी
कि सावधान!
बाहर तूफान का डर है।



उस चरम सत्य को व्यक्त बनाना चाहते हो
इसलिए तुम्हारी पावन धवल-जयन्ती पर, उत्साह अमित
ले, श्रद्धा नत है सकल विश्व उपहार लिये ।*



* आचार्य श्री तुलसीके धवल समारोहपर पठित

किसने छितरायी इस सूने उजड़े
आगन म
तुलसी की ये महकदार पत्तियाँ
जैसे कि चिरकाल से परित्यक्त
भूली बिसरी वीरान कब्र पर
किसी ने रख दी हो टिमटिमाती मोमबत्तियाँ
मैंने सोचा
कि यह मेरा कोरा स्वप्न है
तभी डाल पर बैठी कोयल कुहुक उठी
कि सावधान।
बाहर तूफान का डर है।



५०

और अधिक इन तारो को तुम मत उलझाओ
सुलझाते-सुलझाते इनको म भी तो अब हार गया हू ।

चलने का अभ्यास नही था
फिर भी तेरे एक इशारे पर मैं चलता आया
पथ का भी विश्वास नही था
फिर भी अनजाने एकाकी मैं बढता ही आया
किन्तु यहा आकर मुझको अब मत भरमाओ
लॅगडाते-लॅगडाते ही तो म काटा के पार गया हूँ ।

इन अधरा की प्यास बुझाने
जल निधि की प्रत्येक बूद को मने छान लिया है
इन स्वप्नो म श्वास बसाने
क्या जाने किन किन को या ही अपना मान लिया है
किन्तु अरे अब मध्य भवर म मत ललचाओ
सागर की मोहक लहरा का मनमाना व्यापार नया हू ।



५१

चरणा का इतिहास धूल से ढँक न सकेगा।

उडने का वरदान विहग को तब ही तो मिलता है
जब वह नभ म बार बार उडता है फिर गिरता है
मजिल का अनुमान अधूरा तब तक ही रहता है
जब तक स्व का स्नेह भाव पर म चिपका रहता है
युग बीते हैं आज किन्तु यह घट अब भी रीता है
कौन सत्य है ? क्या जीवन है ? जिसे मनुज जीता है
फिर भी जब तक श्वास कि क्रम यह रुक न सकेगा।

जहा पथ हैं धूप छाह भी, फूल शूल भी मिलते
जो कि पथिक है सम्भव है उसका मन प्रतिपल छलते
किन्तु स्वय का मन भी यदि या ठगने लग जायेगा
तो वालो यह चरण लक्ष्य तक कैसे बढ पायेगा
क्या अतीत के चिन्तन मे ही वतमान को खोते
और व्यथ म भावी का यह भार स्वय पर ढोते
क्यो ऐसे नि श्वास लक्ष्य यो मिल न सकेगा।

तृप्ति यहा जीवन म केवल प्यास बनी रहती है
मुक्ति यहाँ बन्धन म केवल आस बनी रहती है
तृषा-तृप्ति की भावुकता म बीज आज तक बोया
इसीलिए असहाय मनुज ने वस्तु-सत्य को खोया
लहरा की चचलता ने जीवन गतिशील बनाया
किन्तु कौन जिसने आँखो हो छिपी हुइ वह माया
मजिल का विश्राम कूल पर टिक न सकेगा।

•

५२

लिपट जाते हैं जिस मक्खी के पंख
श्लेष्म के रेशों में
क्या उस मक्खी से उड़ने की आशा कर सकते हैं ?
चिपक जाते हैं जिस चींटी के पैर
गुड़ के रेशों में
क्या उस चींटी से आगे बढ़ने की आशा कर सकते हैं ?
उलझ जाता है जिस आदमी का मन
वासना के रेशों में
क्या उस आदमी से
गन्तव्य तक पहुँचने की आशा कर सकते हैं ?
वासना आखिर वासना है
उसकी तुच्छता को कभी महत्त्व नहीं दिया जा सकता
उपासना उपासना है
उसकी महत्ता को कभी अस्वीकार नहीं किया जा सकता ।



५३

यदि तुम्हारा मन टूटा हुआ है
तो धरती के टुकडे तो कम से कम मत करो
यदि तुम्हारा मन विवशताओ स घिरा है
तो नभ की मुसकान म तो विवशता मत भरो
अपने मन का हालाहल
कम से कम इस सरोवर म तो न उँडेलो
जहाँ कि हजारो निरीह प्राणो अपनी प्यास बुझाते हैं
मनु के पुत्र !
मन के पुत्र मत बनो तुम
जिसका अनुसरण कर हर विवेक भटक जाता है।



५२

लिपट जाते हैं जि
श्लेष्म के रेशो म
क्या उस मक्खी से
चिपक जाते हैं जिस
गुड के रेशा म
क्या उस चीटी से आग
उलझ जाता है जिस अ
वासना के रेशा म
क्या उस आदमी से
गन्तव्य तक पहुँचने की अ
वासना आखिर वासना है
उसकी तुच्छता को कभी मह
उपासना उपासना है
उसकी महत्ता को कभी अस्वी



५५

मिल की चिमनी से उठकर आने वाले
इस धुएं को
कैसे रोकूँ ?
कब तक रोकूँ ?
पता नही,
किसके दिल की कालिख है यह
जिसने हजारों-हजार उजले कपड़ो को स्याह बना दिया है,
तो फिर वस्त्र का धोना ही,
उसका उजला होना ही गुनाह है ?
या वस्त्र का रखना ही
?

५६

अंगारे से जलते उस लोहे पर
जब जल की एक बूंद गिरी
तो सारी आग उसे पीने के लिए लपकी
और ठीक यही हाल
दूसरी और तीसरी बूंद का था
लेकिन इस प्रकार
एक एक बूँद के बलिदान ने
अन्त में बता दिया
कि विजय आग की नहीं
सदा सलिल की ही हुआ करती है।



५७

तुम प्यास हरो न हरो जलधर !
पर बूद गिरेगी प्यास हरेगी ।

मेरे स्वास धडकते मेरी आह लिये है
लहर लहर म चिर-कम्पन है
छिछलापन है
क्याकि सदा से
सागर का वह थाह लिये है
तुम पार करो न करो जल निधि !
पर लहर बनेगी नाव तरेगी ।

मेरे पाव भटकते मेरी राह लिये हैं
हर पछी का पख थका है
चिर घायल है
फिर भी प्रतिपल
बढने का उत्साह लिये है
विश्वास करो, न करो तुम रवि !
जब किरण बढेगी, निशा डरेगी ।

मेरे नयन छलकते मेरी पीर लिये हैं
हर अधरो पर गान छिपा है,
पथराया-सा
फिर भी
गुन-गुन मे अपनी वह दाह लिये है
तुम प्यार करो, न करो मधु मन !
जब नयन भरेंगे, सुधा झरेगी ।



युग कहता हो जो कुछ भी मेरे बारे म
म अपना विश्वास नही खोने वाला हूँ।

नभ असीम है लकिन कोई उडना भी जाने
पथ असीम है लकिन कोई चलना भी जाने
कोई उडता है उडने दो क्या करत तुम डाह
रोडा बनकर रोक सकोगे ? यह गतिशील प्रवाह
उवर क्या ? मैं बजर को भी उवर करने
शत शाखो का बीज यही बोने वाला हूँ।

दो तीरा म बहने वाल को कहते सकीण
पर सीमा म अन्तर गर्भित है मेरा विस्तीण
जन्म मरण के दो कूलो मे जो बहती है धार
कौन आज तक आक सका है उसका वह विस्तार
चचल लहरा की गति से मैं या ही घबराकर
मध्य भँवर मे क्या विचलित होने वाला हूँ।

